इकाई 10 नाटकीय कलाकृति निर्माण के प्रकार–सुकुमार, आविद्ध, कथावस्तु का स्वरूप, आधिकारिक, प्रासंगिक, दृश्य, सूच्य

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नाटकीय कलाकृति निर्माण के प्रकार

10.2.1 सुकुमार नाट्य प्रयोग

10.2.2 आविद्ध नाट्य प्रयोग

10.3 कथावस्तु का स्वरूप

10.3.1 आधिकारिक कथावस्तु

10.3.2 प्रासंगिक कथावस्तु

10.3.3 दृश्य कथावस्तु

10.3.4 सूच्य कथावस्तु

10.4 सारांश

10.5 शब्दावली

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- नाटकीय कलाकृति (रूपकों) निर्माण के प्रकार–सुकुमार तथा आविद्ध कथावस्तु के स्वरूप के बारें में जान पायेंगे।
- कथावस्तु के प्रकार–आधिकारिक कथावस्तु एवं प्रासंगिक कथावस्तु के बारें में जान पायेंगे।
- दृश्य कथावस्तु एवं सूच्य कथावस्तु के बारें में जान पायेंगे।
- नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

10.1 प्रस्तावना

अंग्रेजी में जिस अर्थ में 'ड्रामा' शब्द का प्रयोग होता है, उस अर्थ में संस्कृत साहित्य में 'रूपक' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। वैसे अधिकतर इस आंग्ल शब्द का अर्थ 'नाटक' शब्द के द्वारा किया जाता है, किन्तु नाटक रूपकों का एक भेदमात्र है वह रूपकों के दस प्रकारों में से एक प्रकार है। वैसे यह प्रकार रूपक का प्रमुख भेद है। जब हम काव्य की विवेचना करने बैठते हैं, तो देखते है कि काव्य दो प्रकार के हो सकते हैं– प्रथम श्रव्य काव्य तथा दूसरा दृश्य काव्य। पहला काव्य सुनने या पढ़ने की वस्तु है, इसमें श्रवणेन्द्रिय के द्वारा बुद्धि एवं हृदय का सम्पर्क काव्य के साथ होता है।

दूसरा काव्य मुख्य रूप से देखने की वस्तु है, वैसे यहाँ भी पात्रों के संलाप में श्रव्यत्व रहता है। श्रव्य काव्य का कोई रंगमंच नहीं, वह अध्ययनकक्ष की वस्तु है, जबकि दृश्यकाव्य रंगमंच की वस्तु है, उसका लक्ष्य अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन उनमें रस का उद्‌बोध उत्पन्न करना ही है। यही दृश्य काव्य 'रूपक' कहलाता है। 'रूपक' इसे इसलिए कहा जाता है कि इसमें नट पर तत्तत् पात्र रामादि का आरोप कर लिया जाता है–

"रूपकं तत्समारोपात् (कारिका)।
नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुखचन्द्रादिवत्।।"

(दशरूपकावलोक)

उदाहरण के लिए 'भरत–विलाप' या 'रामराज्य' के चलचित्रों में एक नटविशेष–प्रेम आदि पर राम का, उसकी अवस्था का आरोप किया है। प्रमुख रूप से रूपक के दस भेद किए गये हैं। वैसे तो रूपकों से ही सम्बद्ध 18 उपरूपक माने जाते हैं और भरत तथा विश्वनाथ ने उनका उल्लेख किया है, किन्तु धनजंय व धनिक ने उपरूपकों का वर्णन नहीं किया है। यह दूसरी बात है कि तृतीय प्रकाश में प्रसंगवश उपरूपक के एक प्रमुख भेद–नाटिका का विवेचन मिलता है। प्रकरणिका, माणिका, हल्लीश, श्रीगणित, रासक आदि दूसरे उपरूपकों का वहाँ कोई संकेत नहीं। वस्तुतः इनमें से कई भेद रूपकों के ही अवान्तर रूप हैं और कुछ भेद ऐसे भी हैं, जिनका सम्बन्ध काव्य से न होकर प्रमुखतः संगीत कला व नृत्य कला से है। रूपकों के ये दस भेद–वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर किये जाते हैं–**वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः।**

(दशरूपकावलोक)

किसी एक रूपक की कथावस्तु (Plot) उसका नायक–नायक की प्रकृति, तथा उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य प्रकारों से भिन्न करता है। इस इकाई में नाटकीय कलाकृति (कथावस्तु) निर्माण के प्रकार–सुकुमार तथा आविद्ध कथावस्तु तथा कथावस्तु का स्वरूप–आधिकारिक कथावस्तु, प्रासंगिक कथावस्तु और दृश्य कथावस्तु एवं सूच्य कथावस्तु का वर्णन किया जायेगा।

10.2 नाटकीय कलाकृति निर्माण के प्रकार

नाटकीय कलाकृति (रूपकों) का निर्माण रसों और भावों से युक्त नाट्य प्रयोग दो प्रकार का होता है–सुकुमार और आविद्ध। इन दोनों से नाना प्रकार के भाव और रसों का प्रयोग होता है–

प्रयोगो द्विविधाश्चैव विज्ञेयो नाटकाश्रयः।
सुकुमारस्तथाऽविद्धो नाट्ययुक्तिसमाश्रयः।।

(नाट्यशास्त्र, 12/58)

10.2.1 सुकुमार नाट्य प्रयोग

भरत मुनि का मत है कि सुकुमार प्रयोग राजाओं को प्रसन्न करने के लिए बनाये गये हैं, इसलिये इस वर्ग में रखे गये रूपकों में प्रधानतः श्रृंगार रस की योजना करते हुए उन्हें प्रायः स्त्री पात्रों के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। यदि किसी रूपक में लोक में घटित होने वाले सामान्य घटनाक्रम का प्रस्तुतीकरण अपेक्षित हो, उत्तेजक और

आवेगपूर्ण अभिनय की आवश्यकता न हो, लय, ताल और कलात्मक प्रयोग अपेक्षित हों, औचित्यपूर्ण ललित पदविन्यास परिलक्षित होता है तो उसे स्त्रीपात्रों के द्वारा सुकुमार शैली में प्रयोग कराया जाना चाहिये। **(नाट्यशास्त्र 35/51–52)**

इनकी कथावस्तु में मानव और मानवीय संवेदनाओं को केन्द्र में रखा जाता है। नाटक, प्रकरण, भाण, वीथी, अंक एवं नाटिका सुकुमार प्रकृति के रूपक हैं–

नाटकं सप्रकरणं भाणो वीथ्यंकनाटिके।
सुकुमारप्रयोगाणि मानुषेष्वाश्रितास्तु ये।।
(नाट्यशास्त्र, 13/63)

सुकुमाराः प्रयोगा ये राज्ञामामोदकारकाः।
श्रृंगाररसमासाद्य तान्नारीष्वेव योजयेत्।।
(नाट्यशास्त्र, 35/48–49)

इनमें प्रायः श्रृंगार रस का प्राधान्य होता है। श्रृंगार रस की प्रधानता से ये सुकुमार प्रयोग होते हैं और इनमें नृत्य, गीत, मनोविनोद, हास–परिहास बहुल कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रखी जाती है। आंगिक, वाचिक एवं सात्विक अभिनय की बहुलता रहती है और बाह्य उपकरणों की मात्रा सीमित रहती है। लेकिन आहार्य अभिनय का नितान्त अभाव नहीं रहता है।

नाटक, प्रकरण, भाण, वीथी और अंक (उत्सृष्टिकाङ्क) सुकुमार है। इनमें मनुष्य प्रयोक्ता और रसयिता होता है। राजा लोगों को यह सुकुमार प्रयोग अति आनन्ददायी लगता है–

नाटकं सप्रकरणं भाणो वीथ्यङ्क एव च।।
ज्ञेयानि सुकुमाराणि मानुषैराश्रितानि तु।
सुकुमारप्रयोगोऽयं राज्ञामामोदकारकः।।
(नाट्यशास्त्र, 26/23–24)

इसके अतिरिक्त कहा गया है कि जो सुकुमारनाट्य है उसमें यदि श्रृंगार को रस बनाया जाएगा, तो उसका प्रयोग सुतरां स्त्रियों द्वारा ही कराना होगा–**श्रृंगाररसमासाद्य स्त्रीणां तत् तु प्रयोजयेत्। (नाट्यशास्त्र, 26/25)**

10.2.2 आविद्ध नाट्य प्रयोग

जिन रूपकों में उद्धत युद्ध, गति के वेग पूर्ण कार्य, उत्तेजक और आवेगपूर्ण चेष्टायें प्रदर्शित की जातीं हैं, उनमें स्त्री पात्रों को प्रमुख भूमिका में न रखकर पुरुष पात्रों से ही मुख्यतः अभिनय कराया जाता है। नाट्यशास्त्र के त्रयोदश अध्याय में कहा गया है कि–

यत्वाविद्धाङ्गहारान्तु च्छेद्यभेद्याहवात्मकम्।
मायेन्द्रजालबहुलं पुस्तनेपथ्यसंयुतम्।।

पुरुषैर्बहुभिर्युक्तमल्पस्त्रींक तथैव च।
सात्वत्यारभटीयुक्तं नाट्यमाविद्धसंज्ञितम्।।

डिमः समवकारश्च व्यायोगेहामृगौ तथा।
एतान्याविद्धसंज्ञानि विज्ञेयानि प्रयोक्तृभिः।।

एषां प्रयोगः कर्तव्यो दैत्यदानवराक्षसैः।
उद्धता ये च पुरुषाः शौर्यवीर्यबलान्विताः।।

नाट्यशास्त्र 13/59–62

अर्थात् जो युद्ध से उद्धत और आविद्ध प्रयोग हैं, जिनमें संरभ से भरी आरभटी (मारकाट) रहती है, उनमें प्रयोग स्त्रियों से नहीं कराना चाहिए उसमें पुरुषों को ही लगाना चाहिए। इनके उदाहरण वे प्रयोग हैं जिनमें अंगहार (अङ्गचेष्टाएँ) कठोर (आविद्ध) होते हैं, काटना, फाड़ना (शस्त्रास्त्र लेकर) युद्ध आदि की घटनाएँ रहतीं हैं, माया रहती है, इन्द्रजाल रहता है और बहुत बड़ी मात्रा में रहता है, बहुत बड़े आकार बनाए जाते हैं। इन दिनों जैसे रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा आदि और उन्हें सजाया जाता है, जिनमें सक्रियता प्रायः पुरुषों की ही रहती है, स्त्रियाँ बहुत कम रहती हैं और ये उद्धतता लिये रहते हैं, जिनमें या तो सात्त्वती वृत्ति रहती या आरभटी उन सबको आविद्ध माना जाता है। डिम, समवकार, व्यायोग और ईहामृग का कथानक युद्ध की घटनाओं पर आधारित होता है। इनमें वीर, भयानक आदि दीप्तरसों का प्राधान्य होता है। इसलिये आबिद्ध प्रयोगों के लिये सात्त्वती वृत्ति के साथ–साथ आरभटी वृत्ति सर्वाधिक उपयुक्त रहती है। आरभटी में न्याय और सच्चारित्र्य पर लेश मात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता। येन केन प्रकारेण प्रतिपक्ष का अहित करना ही आरभटी का मूल है। इसलिये आरभटी की प्रधानता से युक्त नाट्य प्रयोग आविद्ध श्रेणी के हैं।

नाट्यशास्त्र के छब्बीसवें अध्याय में आविद्ध प्रयोग को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–

युद्धोद्धताविद्धकृताः संरम्भारभटाश्च ये।।
न ते स्त्रीणां प्रकर्त्तव्याः कर्त्तव्याः पूरुषैर्हि ते।

यथाऽऽविद्धाङ्गहारं तु छेद्यभेद्याऽऽहवात्मकम्।।
मायेन्द्रजालबहुलं पुस्तनेपथ्यदीपितम्।

पुरुषप्रायसंचारमल्पस्त्रीकमथोद्धतम्।।
सात्त्वत्यारभटीयुक्तं नाट्यमाविद्धसंज्ञितम्।

डिमः, समवकारश्च व्यायोगेहामृगौ तथा।।
एतान्याविद्धसंज्ञानि विज्ञेयानि प्रयोक्तृभिः।

एषां प्रयोगः कर्तव्यो देवदानवराक्षसैः।
उद्धाता ये च पुरुषाः शौर्यवीर्यसमन्विताः।।

10.3 कथावस्तु का स्वरूप

कथावस्तु का सम्बन्ध पात्रों तथा दर्शकों से होता है, इसलिए कथावस्तु का वर्गीकरण भी पात्र और दर्शक की दृष्टि से भी संभव हो सकता है। स्वरूप का तात्पर्य अपनी अभिव्यक्ति है। स्वयं में यह कैसी होती है? इस प्रश्न का समीचीन उत्तर यह है कि प्रत्येक कथावस्तु किसी न किसी लोकबन्ध महापुरुष का चरित्र होती है जैसे रामायण की कथावस्तु राम की चरितगाथा है। इसी तथ्य को प्रमाण मानकर आचार्यों ने स्वरूप

की दृष्टि से कथावस्तु को दो भागों में विभक्त कर दिया है–1. आधिकारिक कथावस्तु 2. प्रासंगिक कथावस्तु–

वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमंगं प्रासंगिकं विदुः।
(दशरूपक प्रथम प्रकाश पृष्ठ 7)

10.3.1 आधिकारिक कथावस्तु

आधिकारिक कथा को ही प्रधान अथवा मूलकथा भी कहते हैं। किसी फल (वस्तु) पर स्वामित्व होना ही अधिकार है और वह अधिकार जिसके पास हो उसी को अधिकारी कहते हैं। उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण में वर्णित रामकथा के अधिकारी चूँकि भगवान राम हैं, इसलिए रामायण की कथा 'अधिकारिक' कथा है। आचार्य धनंजय के शब्दों में–

'अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।'
(दशरूपक प्रथम प्रकाश पृष्ठ 8)

अर्थात् फल का स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है तथा इस फल का स्थायी अधिकारी कहलाता है। इस फल का फल भोक्ता के द्वारा फल प्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त कथा आधिकारिक वस्तु कहलाती है।

10.3.2 प्रासंगिक कथावस्तु

प्रासंगिक कथा अधिकारिक कथा की अंग होती है। उसका प्रयोग वस्तुतः मूलकथा की पूर्णता मात्र के लिए होता है। परिणामस्वरूप मूलकथा की लक्ष्य सिद्धि के साथ ही साथ प्रासंगिक कथा की भी लक्ष्य सिद्धि सम्पन्न हो जाती है। प्रासंगिक कथा में भी कोई तो अत्यन्त संक्षिप्त होती है सन्दर्भ विशेष में प्रारम्भ होकर वहीं समाप्त हो जाती है; जैसे रामायण में शबरी, जटायुँ, शरभङ्ग, विराध और सम्पाती आदि की लघु कथायें अवसर विशेष में समाहित हैं, इन्हें प्रकरी कथा कहते हैं। ये समस्त कथायें मूल रामकथा का ही अंग हैं, इसके अभाव में रामकथा का विकास सम्भव नहीं था। आचार्य धनंजय ने प्रकरी का लक्षण करते हुए कहा है कि–**'प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।'(दशरूपक प्रथम प्रकाश पृष्ठ 8)** कहने का आशय यह है कि जो कथा या वस्तु दूसरे प्रयोजन के लिए होती है, किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासंगिक वृत्त है। जैसे सुग्रीव कथा का प्रयोजन बालिवध तथा राज्य लाभ। परन्तु कुछ प्रासंगिक कथायें सन्दर्भ–विशेष में उत्पन्न होकर आधिकारिक कथा के साथ ही साथ अन्तिम बिन्दु तक चली जातीं हैं। इस प्रकार की प्रासंगिक कथा को पताका कहते हैं। उदाहरणस्वरूप रामायण में सुग्रीव की कथा जो कि राम कथा के साथ–साथ उत्तरकाण्ड चली जाती है। वस्तुतः प्रकरी और पताका कथायें सागर की विशाल जलराशि में उठने वाली लघु आवर्तों (भँवर) तथा तरंगों के समान हैं। पानी के बुलबुले या भँवरे एक ही स्थान में उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं; आगे नहीं बढ़ते। परन्तु इसके विपरीत तरंगे उठतीं हैं; और सागर जल में दूर तक बढ़तीं जातीं हैं।

पताका और प्रकरी कथा का प्रयोग मूलकथा की लक्ष्यसिद्धि के लिए होता है। शबरी तथा सुग्रीव की कथायें रामकथा की पूर्णता में ही सहायक बनती हैं, परन्तु इन कथाओं (पताका एवं प्रकरी) की अपनी लक्ष्यसिद्धि भी प्रसंगतः हो जाती है। शबरी की सद्गति

अथवा सुग्रीव का साम्राज्य एवं पत्नी लाभ इसका उदाहरण है। आचार्य धनंजय ने लक्षण प्रस्तुत किया है।

इस कथावस्तु के मूल तथा प्रकृति के विषय में भी नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में संकेत दिया है। कथावस्तु मूल की दृष्टि से तीन तरह की होता है–प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र। प्रख्यात कथावस्तु रामायण, महाभारत, पुराण या बृहत्कथादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर होती है। इस प्रकार की कथावस्तु प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध रहती है। उदाहरणार्थ, भवभूति के उत्तररामचरितम् तथा मुरारि के अनर्घराघव की कथा रामायण से ली गई है। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथा महाभारत तथा पद्यपुराण से गृहीत है। भास का स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस ऐतिहासिक कथावस्तु से सम्बद्ध हैं। इनका मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी है। जैसा कि हम देखेंगे नाटक के लिए यह परमावश्यक है कि उनका वृत्त प्रख्यात हो। दशरूपककार ने कथावस्तु के मूल के विषय में लिखते हुए कहा है–

''इत्याद्यशेषमिह वस्तु विभेदजातं
रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथाज्ञ।

आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्या–
च्चित्रं कथामुचितचारुवचः प्रपंचैः।।''

उत्पाद्य कथावस्तु कवि का स्वयं का कल्पित हेाता है–**उत्पाद्यं कविकल्पितम्'** इस इतिवृत्त का प्रयोग कई प्रकार के रूपकों में देखा जाता है, यथा प्रकरण, भाण, प्रहसन। शूद्रक के मृच्छकटिक, भवभूति के मालतीमाधव आदि की उत्पाद्य ही कथावस्तु है। मिश्र कथावस्तु की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है, पर उसमें बहुत सा अंश कल्पित भी होता है।

10.3.3 दृश्य कथावस्तु

समस्त कथावस्तु का विभाजन दो प्रकार का है– सूच्य और दृश्य। अर्थ प्रकृतियाँ, संध्यंग और लास्यांग आदि तो कथावस्तु के अनिवार्य कथांश हैं, जिनके द्वारा उसकी सुसंगठित और रस भावपूर्ण रचना होती है। परन्तु रंगमंच का प्रयोग की दृष्टि से कथावस्तु का एक और भी महत्वपूर्ण विभाजन भरत ने प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण कथा अंकों में विभाजित की जाती है। नाटक और प्रकरण में पाँच से दस अंक तक होते हैं–

प्रकरण नाटक विषये पंचाद्यादशपरा भवन्त्येके।

(नाट्यशास्त्र, 18/29)

अन्य रूपक भेदों के लिए भी अंकों की संख्या नियत है। पर कथा के कुछ ऐसे भी अंश होते हैं, जो अंकों के द्वारा प्रयोज्य नहीं होते, उनकी सूचना विभिन्न शैलियों में दर्शकों को दी जाती है। नाट्यशास्त्र के अनुसार कथा के दो खण्ड होते हैं। कथावस्तु का सरस उचित और आवश्यक अंश तो अंकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है परन्तु प्रयोग की दृष्टि से नीरस और अनुचित अंश विभिन्न अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। दशरूपककार ने उसे ही 'सूच्य' और 'दृश्य' शब्दों से अभिहित किया है। सूच्य के द्वारा नीरस और अनुचित घटनाओं का सूचन होता है और दृश्य द्वारा रंगमंच पर प्रयोज्य वृत्त को प्रस्तुत किया जाता है–

''नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तर।
वृस्वस्त मधुरोदात्त रसभाव निरन्तर।।''
(दशरूपक 1/56–57)

नाट्य दर्पणकार ने आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के चार प्रकारों का उल्लेख किया है–सूच्य प्रयोज्य अभ्यूह्य के द्वारा देशान्तर प्राप्ति आदि की कल्पना की जाती है और उपेक्ष्य के द्वारा कथा के जुगुप्सित भाग की। इस प्रकार स्पष्ट है कि अंकान्तर्गत प्रयोज्य कथांश के अतिरिक्त अन्य सबका सूचन सूच्य तथा अंकच्छेद के द्वारा होता है–

''नीरसानुचितं सूच्यं, प्रयोज्यं तद्विर्प्ययः।
उह्यं तदविनाभूत, उपेक्ष्यं तु जुगुप्सितम्।।''

अंक का स्वरूप–भरत की दृष्टि में 'अंक' रूढि शब्द है। भावों और रसों के योग से अकान्तर्गत कथावस्तु उत्तरोत्तर अंकुरित होता चलता है। इसमें नाना प्रकार के विधानों का भी योग होता है, इसीलिए यह 'अंक' होता है। नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार भट्टलोलट्ट की दृष्टि से अंक यदृच्छा शब्द है, यह भावों और रसों से गूढ़ और व्याप्त होता है–

''अवस्थोयेतं कार्य प्रसमीक्ष्य बिन्दुविस्तारात्।
अंक इति रूढिशब्दो रसैश्च रोहयार्थान्।।

नानाविधाान युक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदं कः।।
भावैच्च रसैश्च गूढश्छन्नः व्याप्तोऽथोङ्कशब्देन।''
(नाट्यशास्त्र 18/13–14)

''यादृच्छिकेनोच्येत इति भट्लोल्लाटाद्या 'गूढ' इति पाठं व्याचक्षिरे।।''
(अभिनवभारती भाग–2, पृष्ठ 415)

उन्होंने 'रूढ़ि' के स्था 'गूढ' पाठ स्वीकार किया है। अभिनवगुप्त की दृष्टि से अंक शब्द चिन्हार्थक है, चिन्ह के द्वारा एक वस्तु का दूसरी वस्तु से पृथक्करण होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में अंक के द्वारा अभिनेय नाट्य रूपक का अन्य अभिनेय काव्यों से पृथक्करण होता है। अभिनेय काव्य का अंक युक्त विशिष्ट अंश रस भाव से परिपुष्ट होता है। अतएव वही अंक होता है। सूच्य या उपक्षेपण नहीं।

10.3.4 सूच्य कथावस्तु

सूच्य कथावस्तु के अन्तर्गत पाँच उपाय आते हैं– विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार और प्रवेशक। दृश्य कथा को तो अभिनय द्वारा मंच पर प्रदर्शित किया जाता है। सूच्य कथांश पात्रों के संवाद द्वारा दर्शकों को सूचित किये जाते हैं। ये सूचना देने वाले पात्र प्रायः अप्रधान होते हैं। कभी–कभी सूच्य कथांशों की सूचना नेपथ्य से भी दी जाती है। ये सभी सूचना प्रकार 'अर्थोपक्षेपक' कहलाते हैं। इन सभी का विवरण धनंजय ने उपन्यस्त किया है। इनके अतिरिक्त पात्रों के पारस्परिक संवाद कई तरह के होते हैं–**प्रकाश, स्वगत, अपवारित तथा जनान्तिक। प्रकाश** पात्रों की वह उक्ति है, जो सर्वश्राव्य हो और जिसे सभी सामाजिक दर्शक सुन सकें। **स्वगत** वह उक्ति है जिसे मंच पर स्थित अन्य पात्र नहीं सुन सकते। **जनान्तिक** उक्ति को मंच पर स्थित

सीमित पात्र ही सुन पाते हैं। **अपवारित** में पात्र उपस्थित पात्रों में से किसी एक ही पात्र को अपनी बात सुनाना चाहता है। जनान्तिक में दो पात्रों को अपनी बात सुनाना चाहता है। जनान्तिक में दो पात्र आपस में गुप्त मंत्रणा करते हैं। दर्शकों के लिए तो ये सभी संवाद श्राव्य होते हैं, केवल 'स्वगत' 'जनान्तिक' आदि का अभिनय किया जाता है। ये नाटकीय रूढ़ियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'आकाशभाषित' का प्रयोग भी नेपथ्य से किया जाता है।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइये।

I. नाट्य के संघटक तत्त्व कितने हैं। (3/4)

II. नाट्य के संघटक तत्त्व वस्तु, नेता के अलावा कौन हैं। (रस/विभाव)

III. कथावस्तु के भेद कितने हैं। (2/4)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

I. अधिकारिक कथावस्तु ..... है। (प्रधान अथवा मूलकथा/गौण कथा)

II. प्रासंगिक कथावस्तु .....है। (प्रधान अथवा मूलकथा/गौण कथा)

III. प्रासंगिक कथावस्तु ..... है। (पताका/बीज)

बोध प्रश्न–2

1. दृश्य कथावस्तु को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

2. प्रासंगिक कथावस्तु को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

कथावस्तु के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए?

10.4 सारांश

इस इकाई में नाटकीय कलाकृति (रूपक) निर्माण के प्रयोग–सुकुमार तथा आविद्ध नाट्यप्रयोग तथा कथावस्तु का स्वरूप एवं उसके भेद आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथावस्तु और दृश्य कथावस्तु एवं सूच्य कथावस्तु का वर्णन किया गया है।

10.5 शब्दावली

कथावस्तु – कथा का विषय

सुकुमार – सुकोमल

आविद्ध	–	कठोर
आधिकारिक	–	मुख्य
प्रासंगिक	–	गौण
दृश्य	–	देखना

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशन रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1962
- अमरकोष, अमर सिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1940
- उत्तररामचरितम्–भवभूति–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, साहित्यसंस्थान इलाहाबाद, 1974
- काव्यप्रकाश–मम्मट–संपादक विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, लि॰ वाराणसी चतुर्थ संस्करण, सं॰ 2027
- काव्यादर्श–दण्डी–चौखम्बा संस्कृत सिरीज, काशी 1958
- कालिदास ग्रन्थावली–पं॰ सीताराम चतुर्वेदी–अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी द्वितीय संस्करण सं॰ 2007 वि॰
- नाटकलक्षणरत्नकोश–सागरनन्दी–संपादक बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1972
- नाट्यशास्त्रम्–संपादक पं॰ केदारनाथ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1943
- नृत्याध्याय–अशोकमल्ल–संपादक वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1971
- दशरूपकम्–धनंजय–संपादक भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1967
- ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन–व्याख्याकार विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लि॰ वाराणसी, प्रथम संस्करण 1962
- प्रतिमानाट्कम–भास–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1953
- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्–भास–संपादक कपिलदेव गिरि, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1958
- भावप्रकाशनम्–शारदातनय–संपादक मदनमोहन अग्रवाल, राधकृष्ण जनरल स्टोर, सादाबाद, मथुरा, प्रथम संस्करण 1978
- मालविकाग्निमित्रम्–कालिदास–संपादक संसारचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, 1971
- स्वप्नवासवदत्तम्–भास–संपादक श्रीमती प्रेमा अवस्थी एवं दयाशंकर, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1971
- अभिनव नाट्यशास्त्र–पं॰ सीताराम चतुर्वेदी, प्रकाशन अखिल भारतीय विक्रम परिषद् बनारस, संवत् 2008

- काव्यशास्त्र– डॉ॰ भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1972
- नाटक के तत्त्व–मनोवैज्ञानिक अध्ययन–कमलिनी मेहता, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1964
- नाट्यकला–रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1961
- नाट्यकला प्राच्य एवं पाश्चात्य, सुदर्शन मिश्र, भारत मनीषा वाराणसी 1974
- भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच– सीताराम चतुर्वेदी–हिन्दी समिति उ॰ प्र॰, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1964
- भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण–वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1971
- भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच–डॉ॰ रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
- भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक–डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं पृथ्वीनाथ द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1971
- भारतीय रंगमंच– आद्यरंगाचार्य–हिन्दी अनु॰ शुभावर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली 1971
- रंगमंच–शेल्डान चेनी–हिन्दी अनु॰ श्री कृष्णदास, हिन्दी समिति उ॰ प्र॰, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1965
- रंगमंच कला और दृष्टि–गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1976
- वैदिक कोष–डॉ॰ सूर्यकान्त, वैदिक रिसर्च समिति, का॰ हि॰ वि॰ वि॰, वाराणसी 1963
- संस्कृत नाटक–कीथ–हिन्दी अनु॰ उदयभान सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1971
- संस्कृत नाटक समीक्षा–इन्द्रपाल सिंह, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1960
- संस्कृत नाट्यकला–रामलखन शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1971
- संस्कृत नाट्यशास्त्र एक पुनर्विचार–जयकुमार, त्रिवेणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
- हमारी नाट्य परम्परा–श्रीकृष्ण, साहित्यकार संसद, प्रयाग 1956
- हिन्दी अभिनव–भारती (अभिनव भारती के तीन अध्याय) भाष्य विश्वेश्वर, सं॰ नगेन्द्र, हिन्दी–विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली प्रथम संस्करण 1960
- हिन्दी नाटक का उद्‌भव एवं विकास–दशरथ ओझा, हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1961
- रंगमंच एवं नाट्यकला एक समग्र अध्ययन, डॉ. देशराज, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2017
- रंगमंच एवं नाट्यकला आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, प्रो. अनुला मौर्य एवं डॉ. देशराज, यशस्वी इन्टरप्राइजेज, दिल्ली

ENGLISH BOOK

- Abhinay Darpan-Nandikeshwar-Ed, M. M. Ghosh-Pub Metropolitan printing publishing house L T D . Calcutta-1934
- A Bibliography of the Sanskrit Drama-Montogomary Schuyler, the Columbia university press, new York -1906
- A History of Sanskrit Literature-A.B.Keith,Oxford University Press,London. First Edn. 1920
- A History of Sanskrit Literature-A.A.Macdonell, Motilal Banarasi Das, Delhi-1962
- A Monograph on Bharata's Natya-Sastra-P.S.R.Appa Rao& P. Sri Ram Shashtri-Natyamala Publishers, Hyderabad-1967
- A Sanskrit English Dictionary-SIR Monier.M. Williams, Oricntal Publishers, Delhi
- Bharat Natya and Its Costume –G.S.Ghurya, Poplar Book Depot, Bombay- 1958
- Bharitya Natya Castram-J.Grosset-Lyons, Paris-1898
- Bharat Natya Manjari-G.K.Bhat, Bhandarkar Reserch Insitute, Poona First Edition.
- Comparative Aesthetics-Indian Aesthetics-Vol.-I-K.C.Pandey, The Chaukgamba Sanskrit Series, Banaras 1950
- Concept of Ancient Indian Theatre-M.Christophar Byraki, Munshiram Manohar Lal, Delhi, First Edn. 1974
- Confliction in Sanskrit Drama-Minakshi Dalal, Samaiya Publication PVT. LTD. Bombay- 1973
- Drama and Dramatics- K.P.Kulkarni, K.P.Kulkarni Satara city 1972
- Drama Stage and Audience J.L.Styan,Cambridge University Press, London. First Edn. 1975
- History of Sanskrit Poetics-P.V.Kane, 1951
- Indian Drama-Sten Konow-Eng.Tr.by Dr.S.N.Ghosal, General Printers & Publishers, Calcutta,First Edn. 1968
- Indian Theatre-C.B .Gupta, Motilal Banarasi Das, Banaras 1954
- Indian Theatre- R.K.Yajnik,United Dn. London 1933
- Natak Lakshan Ratnakosh-Ed. V Raghvan & Myles Dillon, The American Philosophcal Society, Philadelphia 1960
- Natya-Nritta and Nritya – K.M.Varma, Orient Longmans,Bombay, first Edn.1957

- Sanskrit Drama and Dramaturgy- Dr. Biswanath Bhattacharya Bharat Manisha, Varanasi first Edn. 1974
- Studies in Sanskrit Dramatic Criticism-T.G.Mainkar, Motilal Banarasi Das, Delhi 1971
- Studies in the Natya Sastra – G.H.Tarlekar, Motilal Banarsi Das, DELHI First Edn. 1975
- The Development of the Theatre-A.Nicoll,George G.Marrap & Co. LTD first Edn. 1927
- The Greek Theatre and its Drame-Roy C. Flickinger, the university press, Chicago 1961
- The Natya Sastra- Bharat- Eng. Tr. Manomohan Ghosh, The Royal Asiatic Society of Bengal. Calcutta 1950
- The Natya Sastra –Bharat- Ed. M.M.Ghosh, Manisha Granthalay pvt. Ltd. Calcutta 1967
- The Theatre- Sheldon Cheney, Tudor 1947
- Traditional Indian Theatre- Multiple Streams. National Book Trust. N. Delhi. First Edn. 1980

10.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1- (i) 3 (ii) रस (iii) 2

2. (i) प्रधान अथवा मूलकथा (ii) गौण कथा (iii) पताका

बोध प्रश्न–2

1. समस्त कथावस्तु का दो प्रकार का विभाजन–सूच्य और दृश्य। अर्थ प्रकृतियाँ, संध्यग और लास्यांग आदि तो कथावस्तु के अनिवार्य कथांश हैं, जिनके ही द्वारा उसकी सुसंगठित और रस भावपूर्ण रचना होती है। परन्तु रंगमंच का प्रयोग की दृष्टि से कथावस्तु का एक और भी महत्वपूर्ण विभाजन भरत ने प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण कथा अंकों में विभाजित की जाती है। नाटक और प्रकरण में पाँच से दस अंक तक होते हैं– **प्रकरण नाटक विषये पंचाद्यादशपरा भवन्त्येके।**

(नाट्यशास्त्र, 18/29)

अन्य रूपक भेदों के लिए भी अंकों की संख्या नियत है। पर कथा के कुछ ऐसे भी अंश होते हैं, जो अंकों के द्वारा प्रयोज्य नहीं होते, उनकी सूचना विभिन्न शैलियों में दर्शकों को दी जाती है। नाट्यशास्त्र के अनुसार कथा के दो खण्ड होते हैं। कथावस्तु का सरस उचित और आवश्यक अंश तो अंकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है परन्तु प्रयोग की दृष्टि से नीरस और अनुचित अंश विभिन्न अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। दशरूपककार ने उसे ही 'सूच्य' और 'दृश्य' शब्दों से अभिहित किया है। सूच्य के द्वारा नीरस और अनुचित

घटनाओं का सूचन होता है और दृश्य द्वारा रंगमंच पर प्रयोज्य वृत्त को प्रस्तुत किया जाता है–

''नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
वृस्वस्त मधुरोदात्त रसभाव निरन्तरः।।''

(दशरूपक 1/56–57)

नाट्य दर्पणकार ने आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के चार प्रकारों का उल्लेख किया है–सूच्य प्रयोज्य अभ्यूह्य के द्वारा देशान्तर प्राप्ति आदि की कल्पना की जाती है और उपेक्ष्य के द्वारा कथा के जुगुप्सित भाग की। इस प्रकार स्पष्ट है कि अंकान्तर्गत प्रयोज्य कथांश के अतिरिक्त अन्य सबका सूचन सूच्य तथा अंकच्छेद के द्वारा होता है–

''नीरसानुचितं सूच्यं, प्रयोज्यं तद्विपर्ययः।
उह्यं तदविनाभूत, उपेक्ष्यं तु जुगुप्सितम्।।''

अंक का स्वरूप–भरत की दृष्टि में 'अंक' रूढि शब्द है। भावों और रसों के योग से अकान्तर्गत कथावस्तु उत्तरोत्तर अंकुरित होता चलता है। इसमें नाना प्रकार के विधानों का भी योग होता है, इसीलिए यह 'अंक' होता है। नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार भट्टलोलट्ट की दृष्टि से अंक यदृच्छा शब्द है, यह भावों और रसों से गूढ़ और व्याप्त होता है–

''अवस्थोयेतं कार्य प्रसमीक्ष्य बिन्दुविस्तारात्।
अंक इति रूढिशब्दो रसैश्च रोहयार्थान्।।

नानाविधान युक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदं कः।।
भावैच्च रसैश्च गूढश्छन्नः व्याप्तोऽथोङ्कशब्देन।''

(नाट्यशास्त्र 18/13–14)

''यादृच्छिकेनोच्येत इति भट्लोल्लाटाद्या 'गूढ' इति पाठं व्याचक्षिरे।।''

(अभिनवभारती भाग–2, पृष्ठ 415)

उन्होंने 'रूढ़ि' के स्था 'गूढ' पाठ स्वीकार किया है। अभिनवगुप्त की दृष्टि से अंक शब्द चिन्हार्थक है, चिन्ह के द्वारा एक वस्तु का दूसरी वस्तु से पृथक्करण होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में अंक के द्वारा अभिनेय नाट्य रूपक का अन्य अभिनेय काव्यों से पृथक्करण होता है। अभिनेय काव्य का अंक युक्त विशिष्ट अंश रस भाव से परिपुष्ट होता है। अतएव वही अंक होता है। सूच्य या उपक्षेपण नहीं।

2. प्रासंगिक कथा अधिकारिक कथा की अंग होती है। उसका प्रयोग वस्तुतः मूलकथा की पूर्णता मात्र के लिए होता है। परिणामस्वरूप मूलकथा की लक्ष्य सिद्धि के साथ ही साथ प्रासंगिक कथा को भी लक्ष्य सिद्धि सम्पन्न हो जाती है। प्रासंगिक कथा में भी कोई तो अत्यन्त संक्षिप्त होती है सन्दर्भ विशेष में प्रारम्भ होकर वहीं समाप्त हो जाती है; जैसे रामायण में शबरी, जटायुँ, शरभङ्ग, विराध और सम्पाती आदि की लघु कथायें अवसर विशेष में समाहित है, इन्हें प्रकरी कथा कहते हैं। ये समस्त कथायें मूल रामकथा का ही अंग हैं, इसके अभाव में रामकथा का विकास सम्भव नही था। आचार्य धनंजय ने प्रकरी का लक्षण करते हुए कहा है कि–**'प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।'(दशरूपक प्रथम प्रकाश पृष्ठ 8)** कहने का आशय यह है कि जो कथा या वस्तु दूसरे प्रयोजन के

लिए होती है, किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासंगिक वृत्त है। जैसे सुग्रीव कथा का प्रयोजन बालिवध तथा राज्य लाभ। परन्तु कुछ प्रासंगिक कथायें सन्दर्भ–विशेष में उत्पन्न होकर आधिकारिक कथा के साथ ही साथ अन्तिम बिन्दु तक चलीं जातीं हैं। इस प्रकार की प्रासंगिक कथा को पताका कहते हैं। उदाहरणस्वरूप रामायण में सुग्रीव की कथा जो कि राम कथा के साथ–साथ उत्तरकाण्ड तक चली जाती है। वस्तुतः प्रकरी और पताका कथायें सागर की विशाल जलराशि में उठने वाली लघु आवर्तों (भँवर) तथा तरंगों के समान हैं। पानी के बुलबुले या भँवरे एक ही स्थान में उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं; आगे नहीं बढ़तीं। परन्तु इसके विपरीत तरंगे उठतीं हैं; और सागर जल में दूर तक बढ़तीं जातीं हैं।

पताका और प्रकरी कथा का प्रयोग मूलकथा की लक्ष्यसिद्धि के लिए होता है। शबरी तथा सुग्रीव की कथायें रामकथा की पूर्णता में ही सहायक बनतीं हैं, परन्तु इन कथाओं (पताका एवं प्रकरी) की अपनी लक्ष्यसिद्धि भी प्रसंगतः हो जाती है। शबरी की सद्‌गति अथवा सुग्रीव का साम्राज्य एवं पत्नी लाभ इसका उदाहरण है। आचार्य धनंजय ने लक्षण प्रस्तुत किया है।

इस कथावस्तु के मूल तथा प्रकृति के विषय में भी नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में संकेत दिया गया है। कथावस्तु मूल की दृष्टि से तीन तरह की होती है–प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र। प्रख्यात कथावस्तु रामायण, महाभारत, पुराण या बृहत्कथादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर होती है। इस प्रकार की कथावस्तु प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध रहती है। उदाहरणार्थ, भवभूति के उत्तररामचरितम् तथा मुरारि के अनर्घराघव की कथा रामायण से ली गई है। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथा महाभारत तथा पद्मपुराण से गृहीत है। भास के स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस ऐतिहासिक कथावस्तु से सम्बद्ध हैं। इनका मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी है। जैसा कि हम देखेंगे नाटक के लिए यह परमावश्यक है कि उनका वृत्त प्रख्यात हो। दशरूपककार ने कथावस्तु के मूल के विषय में लिखते हुए कहा है–

"इत्याद्यशेषमिह वस्तु विभेदजातं
रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथाज्ञ।

आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्या–
च्चित्रं कथामुचितचारुवचः प्रपंचैः।।"

उत्पाद्य कथावस्तु स्वयं कवि कल्पित होती है–**उत्पाद्यं कविकल्पितम्'** इस इतिवृत्त का प्रयोग कई प्रकार के रूपकों में देखा जाता है, यथा प्रकरण, भाण, प्रहसन। शूद्रक के मृच्छकटिक, भवभूति के मालतीमाधव आदि की कथावस्तु उत्पाद्य ही है। मिश्र कथावस्तु की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है, पर उसमें बहुत सा अंश कल्पित भी होता है।

अभ्यास प्रश्न–इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।